भोजन में निहित है मनुष्य के स्वास्थ्य का राज

- लेखक : ललित शर्मा
- तारीख : July 25, 2025

धरती के किसी भी प्राणी को जीवन संचालन के लिए उर्जा की आवश्यकता होती है एवं प्राण संचालन की उर्जा भोजन से प्राप्त होती है। मनुष्य भी चौरासी लाख योनियों में एक विवेकशील प्राणी माना गया है, इसे भी उर्जा के लिए भोजन की आवश्यकता होती है। अन्य सभी प्राणियों का तो भोजन निर्धारित है, उन्हें पता है कि क्या खाना है। परन्तु मनुष्य ही एकमात्र ऐसा प्राणी है जो अपनी रुचि, स्वाद एवं उपलब्धता के आधार पर भिन्न-भिन्न प्रकार का भोजन करता है। कहा जाए तो शरीर का पोषण एक सम्पूर्ण विज्ञान है, जिसे वेदों में प्रमुखता से स्थान दिया गया है। यजुर्वेद का एक मंत्र है ---

अन्नपते अन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिणः। प्र प्र दातारं तारिषऽ ऊर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे ॥ यजु 11-83
(अर्थात ओ! हमारे भोजन के शक्तिशाली प्रदाता, आप हमें ऐसा भोजन प्रदान करते हैं जो किसी भी हानिकारक जीवों से मुक्त हो और जो बहुत ताकत प्रदान करता हो। हे अन्नदाता! मैं और मेरे पशु दोनों ही तुम्हारे भोजन और ऊर्जा की अच्छी मात्रा से संतुष्ट हों॥)

हमारे पूर्वजों ने हजारों वर्षों तक शोध करके मनुष्य के उपभोग लायक भोजन के मानक तैयार किए और उन्हें पथ्य एवं कुपथ्य का नाम दिया। यह बताया कि कौन सा भोजन मनुष्य के लिए लाभकारी है और कौन सा हानिकारक। परन्तु वर्तमान समय में मनुष्य उन मानकों के विपरीत भोजन कर रहा है जिससे उसके स्वास्थ्य को हानि ही हो रही है।

कृषि उत्पादन

हम देखते है कि सब्जी जैसी वस्तु की मंहगाई का सुर्खियों में बनी रहती हैं। इसका अर्थ है कि हमारे खान पान में बदलाव हो रहा है एवं बेरुत (गैर मौसमी) की सब्जियों का सेवन बढ गया है, जिसके कारण मंहगाई भी दिखाई दे रही है और स्वास्थ्य भी खराब हो रहा है, चिकित्सा का खर्च बढ रहा है। छोटे-छोटे बच्चों को उच्च रक्तचाप एवं कोलेस्ट्रोल बढने की शिकायतें दिखाई दे रही हैं।

यह हमारे अनुचित एवं बिना ऋतु के खान पान का परिणाम है। शारीरिक व्याधियों में निरंतर वृद्धि हो रही है तथा मधुमेह एवं उच्च रक्तचाप के रोगी बढ़ रहे हैं। आज स्थिति यह है कि भारत में शायद ही ऐसा घर हो जिसमें इन दोनो व्याधियों में किसी एक का मरीज न मिल जाए। प्राचीन काल में औषधि के रुप में भोजन ग्रहण किया जाता था।

यदपामोषधीनां परिशमारिशामहे | वातपे पीव इद्भव || ऋ1/187/8
(अर्थात- (वातापे) भौतिक शरीर (अपाम ओषधीनाम्) तरल जल ओषधि पदार्थ इत्यादि (यतआरिशामहे पीब:) जो हम खाते हैं पी कर (इत भव) स्वस्थ हृष्ट पुष्ट करें।)

कभी टमाटर मंहगे हैं तो कभी निम्बू मंहगा है तो कभी दाल ने कमर तोड़ दी तो कभी प्याज के भाव ने जीना दूभर कर दिया। यह सब वर्तमान में ही क्यों सुनाई देता है? आज से तीस बरस पहले तो यह सब सुनाई नहीं देता था कि सब्जियों का मूल्य बढ गया है और न सत्ता पक्ष ध्यान देता था न विपक्ष, न अखबार वालों को इस तरफ़ देखना पड़ता था। और भी बहुत सारी जन समस्याएं थी जिस पर सरकार और प्रशासन ध्यान देता था।

अगर हम पीछे मुड़कर देखें तो हमारे पूर्वज स्वस्थ रहा करते थे एवं प्रसन्नता से अपनी पूरी उम्र जी कर जाते थे। आज व्याधियों के कारण अकाल मृत्यू का प्रतिशत बढ गया है। हम तीस चालिस बरस पीछे का हमारा जीवन देखें तो हम हमेशा ऋतु में होने वाली उपज का ही सेवन करते थे।

छत्तीसगढ़ का पारम्परिक भोजन - अंगाकर रोटी

भारत में वर्षा, शीत एवं ग्रीष्म तीन प्रमुख ऋतुएं होती हैं। वर्षाकाल में हरी सब्जियों का सेवन नहीं किया जाता था। ग्रीष्म ऋतु में ही वर्षाकाल के भोजन की तैयारी कर ली जाती थी। भोजन के भंडारण को लेकर अथर्ववेद का मंत्र कहता है-

पयस्वतीरोषधय: पयस्वन्मामकं वच:। अथो पयस्वतीनामा भरेऽहं सहस्रश: ॥ अथर्व 3.24.1
(अर्थात - उस (अन्न) की (उत्पादन की) बात करो जो पौष्टिक और ओषधि है। सहस्रों कोठियों मे उस का भंडारण करो।)

गेंहूँ, चावल, दाल, गुड़, नमक, घी आदि भोजन के मुख्य तत्व को जमा कर लिया जाता था। दाल की बड़ी, बिजौरी, पापड़, खट्टी मिर्च, टमाटर, आम का अमचूर इत्यादि तैयार सुखा कर लिए जाते तथा विभिन्न तरह के अचार बना लिए जाते थे। इसके साथ ही सब्जियों को सुखा लिया जाता था, जिसे विभिन्न अंचलों में सुखसी, सुखड़ी, सुखौंत, खोइला, खेलरा आदि नामों से जाना जाता है।

मेथी, पालक, लाल भाजी, चुनचुनिया एवं अन्य तरह की भाजियों को सुखाकर डिब्बे में बंद कर दिया जाता था। जिसका उपयोग वर्षा काल में किया जाता था।मांसाहार करने वाले भी अपने लिए मांस सुखा लेते थे, यहाँ तक कि मछली भी सुखा ली जाती थी, जिसे सुखसी कहा जाता है।

प्राचीन काल से मनुष्य का पालनहार गौवंश

वर्षाकाल में दही और छाछ का प्रयोग भी नहीं किया जाता था। भैषजिक शास्त्रों में वर्षा को संक्रमण का काल एवं स्वास्थ्य के लिए सचेत रहने का काल बताया गया है। रोगकारक विषाणुओं की शत्रु सूर्य की किरणें है और वर्षाकाल में सूर्य प्रकाश न होने के कारण व्याधियों के विषाणु अधिक सक्रीय हो जाते हैं। इसलिए खान पान के प्रति विशेष सावधानी रखी जाती थी। क्योंकि खान - पान हमारी चेतना, बुद्धि, मन एवं शरीर को प्रभावित करता है इसलिए शरीर को पुष्ट करने के लिए उत्तम भोजन किया जाता है, ऋग्वेद का यह मंत्र कहता है-

यत्ते सोम गवाशिरो यवाशिरो भजामहे। वातापे प्पेब इद्भव ॥ ऋ1/187/9
(अर्थात (सोम) बुद्धि पूर्वक (गवाशिर: यवाशिर: भजामहे) गौ दुग्ध यव वनस्पति इत्यादि का भोजन जब हम गृहण करते हैं (ते) से (यत वातापे पीब: इत भव) जो हम पी कर गृहण करते हैं (खाना भी पी कर गृहण होता है) हमारे शरीर को स्वस्थ हष्ट पुष्ट करे।)

वर्षाकाल में बोई गई सब्जियों की आमद शीत काल में होती है, इसलिए दीवाली के समीप हरी सब्जियों की आमद होने कारण इनका सेवन प्रारंभ होता था। शीत ऋतु को सेहत के लिए सबसे अधिक उपयुक्त बताया गया है। इस ऋतु में खाया पिया अंग लगता है तथा डटकर भोजन एवं ब्यंजनों का सेवन करने की परम्परा रही है। चिकित्सा विज्ञान भी इसे हेल्दी सीजन कहता है।

संक्रामक रोगों की कीटाणु धरती से गायब हो जाते हैं एवं अधिक शीत होने के कारण कफ़जनित रोग होते हैं। इस तरह हम भी सब्जियों का सेवन शीत ऋतु में ही अधिक करते थे। स्कूल जाते समय रोटी के साथ गुड़ या एक अचार की फ़ांक रखकर ले जाते और दोपहर का भोजन हो जाता था।

इस तरह ग्रीष्म काल भी वर्षाकाल की तैयारियों में बीत जाता था। इस दौरान घी दूध, दही, मही का सेवन बढ जाता है और ऐसा भोजन किया जाता है जिसमें पानी की मात्रा अधिक हो। क्षेत्र के अनुसार लोक ने ग्रीष्मकालीन भोजन का अविष्कार कर लिया। भोजन में खटाई की मात्रा बढ जाती है।

छत्तीसगढ़ अंचल में बासी का सेवन प्रारंभ हो जाता है। एक बटकी बासी, चटनी, अचार, प्याज या मही (छाछ) के साथ खाकर आदमी अपने काम पर चला जाता है। हरियाणा, राजस्थान में जौ के दाने (घाट) एवं बाजरे या गेहूँ के आटे की राबड़ी का सेवन सुखकारक हो जाता है। पंजाब में लस्सी का एवं गुजरात में छाछ का चलन बढ जाता है तो दक्षिण में इमली का सेवन अधिक हो जाता है।

कृषि की तकनीकि में नवोन्मेष होने के कारण बेरुत में भी सब्जियां दिखाई देने लगी। जिन्हें विभिन्न तरह की रोगरक्षक दवाईयों के छिड़काव से तैयार किया जाता है। अब हर मौसम में सभी तरह की सब्जियां मिलने लगी तो लोग पथ्य एवं कुपथ्य को भूल कर उसका सेवन करने लगे। अब यही आदत में सम्मिलित हो गई। बेरुत की किसी भी सब्जी का मूल्य बढ जाता है तो हो हल्ला प्रारंभ हो जाता है। अथर्ववेद का मंत्र कहता है-

वेदाहं पयस्वन्वतं चकार धान्यं बहु। सम्भृत्वा नाम यो देवस्त्वं वयं हवामहेयोयो अयज्वानो गृहे ॥ अथर्व 3.24.2
(अर्थात उस ज्ञान का विस्तार करो जिस के द्वारा इस प्रकार का उत्तम अन्न बहुलता से उत्पन्न किया जा सके। जिस प्रकार सब को समान रूप से प्रकृति की सब वस्तुएं सम्भरण देवता द्वारा उपलब्ध रहती हैं उसी प्रकार यह अन्न भी सब को समान रूप से उपलब्ध रहना चाहिए। जिन स्वार्थी (अयज्वन जनों – यज्ञ न करने वाले) के घरों में इस अन्न का भंडार हो उसे सब साधारण जनों को उपलब्ध करो।)

सभी जानते हैं कि वर्षा के दौरान टमाटर का उत्पादन नहीं होता है, प्याज का उत्पादन नहीं होता है तो इसका सेवन कम किया जा सकता है या नहीं भी किया जा सकता। कोई आवश्यक नहीं है कि जिस वस्तु से स्वास्थ्य को हानि हो उसका सेवन जबरिया किया जाए।

हाट बाजार में उपलब्ध सब्जियाँ

दो-तीन दशक पूर्व हमने ही देखा है कि भोजन में तेल इत्यादि का प्रयोग नहीं होता था। घी का प्रयोग किया जाता था। बिना बघार के सब्जियाँ बनती थी, हमारे यहाँ तो पानी से बघार दे दिया जाता था और वह सब्जी भी अत्यंत स्वादिष्ट एवं लाभकारी होती थी।

वर्तमान में तेलों का चलन बढ गया। अखाद्य तेलों को भी खाद्य का जामा पहनाकर बाजार में प्रस्तुत किया जा रहा है, जिसमें राईसब्रान, सोयाबीन, पॉम आईल, वनस्पति घी इत्यादि। ये सब तेल सेहत के अत्यंत हानिकारक है एवं शुगर एवं हृदयरोग आदि की व्याधियों के मुख्य कारक भी हैं। जहां तक हो सके इन तेलों का प्रयोग नहीं करना चाहिए। भोजन में गाय, भैंस का घी एवं अधिक जरुरी हुआ तो सरसों तेल का उपयोग किया जा सकता है।

आयुर्वेद के प्रथम पृष्ठ पर ही सार तत्व लिख दिया गया है कि मानव शरीर में व्याधियों का कारण कफ़, पित्त एवं वात का असंतुलन है। इनका संतुलन बनाए रखने के लिए पथ्य का सेवन करना चाहिए। एक सूत्र दिया है ऋतभुक, हितभुक, मितभुक, ऋतु के अनुसार भोजन का सेवन करना चाहिए, जो आपके जीवन के लिए हितकारी उस भोजन का सेवन करना चाहिए, तथा स्वास्थ्य के लिए लाभकारी यही है कि भोजन मितव्ययिता के साथ किया जाए।

पहले के लोग सूर्यास्त तक भोजन कर लेते थे। आज लोग रात बारह बजे के बाद भी प्रेतकाल में भोजन करते हैं। इससे चया-पचय को हानि होती एवं जठराग्नि के मंद होने से कफ़, पित्त, वात का संतुलन बिगड़ कर व्याधियों को जन्म देता है। वेद मंत्र उपजाए गई भोजन सामग्री को किस तरह प्रयोग में लाया जाए, इसका भी निर्देश देते हैं.....

तिस्रो मात्रा गन्धर्वाणां चतस्रो गृहपत्न्या: । तासां या स्फातिमत्तमा तया त्वाभि मृशामसि ॥ अथर्व 3.24.6
(अर्थात इस उत्पादन के तीन भाग शिक्षा कार्य कौशल और अनुसंधान के लिए प्रयोग में लाए जाएं, चार भाग गृह पत्नियों को परिवार के पालन हेतु उपलब्ध होना चाहिए। यदि कुछ अधिक उपलब्धि हो तो आठवां भाग राष्ट्र को उन्नत बनाने में प्रयोग किया जाए।)

मेरा इतना ही कहना है कि ऋतु के अनुसार भोजन होना चाहिए। कहा गया है न - समय पाये तरुवर फ़ले, केतक सीचो नीर। परन्तु वर्तमान में यह उक्ति चरितार्थ होते दिखाई नहीं देती क्योंकि कृषि तकनीक ने ऋतु चक्र ही बदल दिया। परन्तु अभी भी समय है अगर स्वस्थ रहना है तो ऋतुओं के अनुसार भोज्य का सेवन करना चाहिए तथा उत्पन्न खाद्यान्न का सदूपयोग कर जीवन का सुखपूर्वक संचालन करना चाहिए।

उपोहश्च समूहश्च क्षत्तारौ ते प्रजापते । ताविहा वहतां स्फातिं बहुं भूमानमक्षितं ॥अथर्व3.24.7
(अर्थात खाद्यान्न का उत्पादन करने वाले और उस से प्राप्त धन का सदुपयोग करने वाले दो समूह इस समाज को सुचारु रूप से चलाने वाले दो सारथी हैं। वे दोनों समृद्धि को लाएं, हमारा अन्न विपुल हो, सदैव वर्द्धनशील हो और कभी समाप्त न हो।)